खण्ड: 1, अंक: 4

नवम्बर 2018

संश्लेषण

डी सी आर सी मासिक पत्रिका

संघर्षरत कृषक

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

मुख्य संपादक
प्रो. सुनील के चौधरी

संपादक
डा. रमेश भारद्वाज
नागेन्द्र कुमार
शरद कुमार यादव

संपादकीय मंडल
डा. अभिषेक नाथ
कुँवर प्रांजल सिंह
आशीष कुमार शुक्ल

© डीसीआरसी 2018

रूपाकंनः आर किशोर

संश्लेषण
मुख्य कथ्यः संघर्षरत कृषक

अनुक्रमिका i

संपादकीय ii

1. भारतीय कृषकः दशा, दिशा एवं दुर्दशा – अरूण कुमार 1–4
2. वर्तमान परिदृश्य में भारतीय कृषक की स्थिति – राहुल शर्मा 5–6
3. भारतीय कृषकः समस्याएं एव प्रशासन – राम किशोर 7–9
4. कोसी के किसानः दशा और दिशा – निशा कुमारी 10–11
5. आंदोलित अन्नदाता – सृष्टि 12–13
6. संघर्षरत कृषक और आरक्षण की नई मांग – शंभुराज प्रभाकर शिंदे 14–16
7. एम. एस. स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें एवं कृषक असंतोष – प्राची राज 17–19
8. संघर्ष से समन्वय की ओर कृषक समुदायः एक प्रतिमान – पंकज 20–22

संपादकीय

विकासशील राज्य शोध केन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका, संश्लेषण के चतुर्थ अंक का प्रकाशन करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। हिन्दी भाषा की यह पत्रिका शोध केन्द्र से संबंधित समस्त शोधार्थियों, शिक्षार्थियों एवं विद्यार्थियों द्वारा समसामयिक मासिक विषय पर एक सामूहिक लेख प्रकटीकरण का प्रयास है।

वर्ष 2019 का नवम्बर माह कृषकों से प्रेरित एवं प्रभावित विभिन्न आंदोलनों पर केन्द्रित रहा। भारत के विभिन्न भागों में इन आंदोलनों ने समाज में संघर्षरत कृषकों के वास्तविक जीवन से आम जन को अवगत करवाया तथा साथ ही साथ भारतीय राजनीति को संभ्रात वर्ग से सामान्य जन की ओर केन्द्रित करने का प्रयास भी किया। विषय की समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र ने 'संघर्षरत कृषक' विषय पर लेख आमंत्रित किये। आठ उत्कृष्ट लेखों को सम्पादकीय मंडल ने चयनित किया जो आप सभी के समक्ष एक प्रकाशित पत्रिका के रूप में उल्लेखित हो रहे हैं। ये समस्त लेख न केवल सामाजिक आंदोलनों में कृषकों की भूमिका के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करते हैं अपितु कृषकों से संबंधित मुद्दों की महत्ता व भारतीय परिप्रेक्ष्य में उनकी समग्रता को भी उद्धृत करने का प्रयास कर रहे हैं।

संश्लेषण के चतुर्थ अंक के समस्त लेख मौलिक होने के साथ–साथ सामाजिक व राजनीतिक जीवन से संबंधित आधारभूत बिंदुओं को भी प्रकट करते हैं। लेखकों के विचार स्वतंत्र चिंतन के परिचायक हैं तथा सम्पादकीय मंडल ने इनकी मौलिकता को संपादन के माध्यम से किसी भी प्रकार प्रभावित व परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया है। व्यक्तिगत लेखों में प्रस्तुत तथ्य एवं मत लेखकों के स्वंय की रचनात्मकता, सृजनात्मकता एवं मौलिकता को प्रदर्शित करती है।

संश्लेषण के चतुर्थ अंक में प्रकाशित लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर हम वर्ष 2018 के दिसम्बर माह के अपने पंचम एवं अंतिम समसामयिक तथा महत्वपूर्ण अंक में और अधिक गुणवत्ता लाने का प्रयास करेंगे।

संपादक मंडल

सोमवार, 31 दिसम्बर 2018

1

भारतीय कृषकः दशा, दिशा एवं दुर्दशा

अरूण कुमार
प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार

''बातें तो खूब बनती है, पर कुछ बात ही नहीं बनती हैं।''

ऐसा परिदृश्य भारतीय कृषि में देखने को मिलता है। स्वातंत्र्योतर काल से ही भारतीय कृषक एवं कृषि की स्थिति चर्चा–परिचर्चा का विषय अनवरत् बनी हुई है। भारत की लगभग 62 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, इसके बावजूद भारत में कृषि की अवनति और उसके पतन का विषय सदैव विवादों में ही रहा है। वर्तमान समय में भी यदि किसानों की दशा देखी जाए तो इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि देश में कई राज्यों से कृषि की दुर्दशा के कारण किसानों की आत्महत्या की खबरें निरंतर आती रहती है। किसानों के द्वारा आत्महत्या की खबरें देश के किसी एक राज्य अथवा क्षेत्र से नहीं वरन् देश के कई राज्यों में कमोबेश एक जैसी है। उदाहरणस्वरूप– आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, केरल, पंजाब, राजस्थान, ओडिशा, तथा मध्यप्रदेश। कैसी विचित्र स्थिति है ''कृषि प्रधान देश'' में कृषि का 'प्रधान' कृषक स्वयं ही दीन–हीन दशा में है, और दशा भी ऐसी की वो आत्महत्या को मजबूर है। कृषि का व्यवसाय ऐसी अवस्था में पहुँच गया है कि यह उनके उत्पादकों तक को जीवित रख पाने में सक्षम नहीं हैं। अजीब विडंबना है– ''अन्नदाता ही भूखा मर रहा है।''

उपरोक्त दुर्दशा या कथित दशा के लिए समय–समय पर सरकारों द्वारा लिए गए अदूरदर्शी निर्णय और कृषि के प्रति उदासीन एवं उपेक्षित रवैया काफी हद तक उत्तरदायी है। कृषक की दशा, दिशा और दुर्दशा में सरकारी योगदान स्पष्ट प्रतीत होता है–

नीति की नियति पर किसान की किस्मत :

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् से ही विकास के दो मुख्य आयाम रहे हैं कृषि एवं उद्योग। चूँकि कृषि की तात्कालिक अवस्थिति एवं राष्ट्रीय स्तर पर उसकी व्यापकता को देखते हुए कृषि को प्रमुखता दी गई तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि को केंद्र में रखा गया। परन्तु शहरी उद्योग एवं उसके समर्थकों के सरकार पर बढ़ते दबाव के परिणामस्वरूप द्वितीय पचंवर्षीय योजना में कृषि का स्थान उद्योगों को दिया गया।

अब ना जाने यह व्यवस्था की छटपटाहट थी कि कैसे ''कृषि प्रधान देश'' जैसे तथाकथित वाक्य से स्वयं को मुक्त कर अग्रणी राष्ट्रों में शमिल हुआ जाए या वास्तव में राष्ट्र के विकास

के लिए अवश्यम्भावी था। कारण जो भी हो यह स्पष्ट है कि राज्य एवं सरकार पर उद्योग एवं शहरी वर्गो की वर्चस्वता का ही यह परिणाम था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कृषि के स्थान पर उद्योग को महत्व दिया गया। जिस राष्ट्र में 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अपनी समस्त आवश्यकताओं के लिए कृषि पर निर्भर हो उस देश में कृषि के उद्धार के लिए मात्र पॉच वर्ष देना अपने आप में अतिश्योक्ति है या कहें '' ऊँट के मुँह में जीरा'' के समान।

यह सरकार की अदूरदर्शिता ही थी जिसका परिणाम वर्तमान समय में कृषि और कृषक दोनों को भुगतान पड़ रहा है।

'हरित क्रांति– एक अदूरदर्शी प्रयास

1960 के दशक में भारत में गंभीर खाद्यान्न संकट के फलस्वरूप जब विदेशों से अनाज आयात करना पड़ा जो विदेशों की शर्तो पर बंधा था तो इस अवस्था से उबरने के लिए हरित– क्रांति योजना चलाई गई, परन्तु इस योजना से कृषक समाज का वो ही वर्ग और कृषि के वह क्षेत्र ही समृद्ध हो पाए जो पहले से ही संपन्न थे। बड़े एवं अमीर किसानों का एक समृद्ध वर्ग निर्मित हुआ जिसे रूडोल्फ एवं रूडोल्फ ने भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में ष्ठनससवबो ब्ंचपजंसपेजष का नाम दिया।

'कृषि का राजनीतिकरणः कृषि का **PPP** प्रतिमान **(Peasant, Politics, Poverty)**

जिस प्रकार रजनी कोठारी ने राजनीति के जातीय विस्तार को ''जाति का राजनीतिकरण'' कहा। भारतीय कृषि भी राजनीति और राजनेताओं का लोकप्रिय विषय है। राज्यों की सरकारें अथवा राजनीतिक दल लोकलुभावन राजनीति का सहारा लेते हुए अपने चुनावी वायदों में ऋण माफी योजना जैसी अन्य कई घोषणाएँ कषकों के हित में करते है। परन्तु वास्तव में इसमें भी किसानों का हित कम है वरन सत्ताधारी दलों एवं अन्य राजनीतिक दलों का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार की ऋण मोचन जैसी योजनाओं द्वारा अपने पक्ष में वोट बटोर कर येन–केन–प्रकारेण सत्ता प्राप्त करना अधिक है।

दूसरा इस प्रकार की कर्ज–माफी की योजनाएँ ठीक उसी प्रकार है, जैसे एक रोग ग्रस्त पेड़ में यदि दवाइँयों के छिड़काव की आवश्यकता है तो उसको ठीक करने के लिए दवाइयों का छिड़काव जड़ों में न करके उसके पत्तों में किया जा रहा हो। यह पद्धति ''किसानों की गरीबी का राजनीतिक प्रतिमान'' बतलाती है।

किसानों द्वारा अपनी समस्याओं और मांगों के समर्थन में रैलियाँ, धरना–प्रदर्शन, घेराव आदि सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए की जाती रही है। चाहे वह 80 के दशक में की गई भारतीय किसान यूनियन की रैली हो अथवा वर्तमान में कुछ दिन पूर्व दिल्ली के रामलीला मैदान में किसानों के विभिन्न गुटों का एक हो जाना । किसानों की आत्महत्या को देखे तो राष्ट्रीय

अपराध लेखा कार्यालय (NCRB) के अनुसार भारत में 2008 में 11196 किसानों ने आत्महत्याएँ की थी। वर्ष 2009 के दौरान यह आंकड़ा 17368 तक पहुँच गया। कुल मिलाकर 1994 से 2011 के बीच 7 लाख, 50 हजार, 860 किसानों ने आत्महत्त्या की। इस भयावय स्थिति का प्रकोप संपूर्ण भारत में फैला हुआ है।

एम. एस. स्वामीनाथन रिपोर्ट – एक महान कृषि वैज्ञानिक की अनुशंसाएँ

निरंतर होते कृषक संघर्ष एवं कृषि की दुर्दशा के लिए वर्ष 2004 के पश्चात् सरकार ने एम. एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया। स्वामीनाथन ने कृषि एवं किसानों की दशा में सुधार किए जाने की दिशा में पाँच प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। स्वामीनाथन आयोग ने अपने प्रतिवेदन में उन प्रमुख बिंदुओं को उजागर किया जिनके फलस्वरूप किसानों की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई है। इसमें भूमि सुधारों का ठीक प्रकार से लागू न होना, सिंचाई जल की उपलब्धता में कमी, कृषि के लिए उन्नत एवं कुशल तकनीकों की कमी, किसानों के लिए सुलभता से कर्ज की अनुपलब्धता आदि सम्मिलित है।

समस्त कारकों के अध्ययन एवं राष्ट्रीय स्तर पर इन समस्याओं के विश्लेषण के पश्चात् स्वामीनाथन समिति ने कृषकों की स्थिति में सुधार के लिए अनेक अनुशंसाएँ की जैसे– कृषि की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी, किसानों को कर्ज की उपलब्धता, अकालग्रस्त इलाकों के लिए विशेषनीति, अंतर्राष्ट्रीय आयातों से कृषि उत्पाद को सुरक्षा तथा स्थानीय शासन की मजबूती, इसके साथ किसानों के लिए खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा आदि विषय प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त कृषि को समवर्ती सूची में डालने की सिफारिश भी प्रमुख थी। स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों ने काफी हद तक किसानों की मुख्य समस्या एवं पीड़ा को पहचाना और दुर्बलता को दूर करने के कई सुझाव दिए। परन्तु खेद है कि आज तक भी स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों को लागू नहीं किया जा सका है। यह भी सरकार की कृषि क्षेत्र की ओर उदसीनता को ही दर्शाता है।

ग्राम स्वराज– गांधी का चिरप्रतिक्षित स्वप्न

उपरोक्त समस्या एवं सुझाव को जानने के उपरांत गाँधी जी के उस स्वप्न की याद आती है जो उन्होंने 'ग्राम–स्वराज' को लेकर देखा था। वर्तमान ग्राम परिदृश्य (संकट) को हम महात्मा गांधी जी के 'ग्रामस्वराज' की संकल्पना के दृष्टिकोण द्वारा भी समझ सकते है। राष्ट्र की स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात् भी गाँधी जी का यही मानना था कि शक्ति का केंद्र या शासन की वास्तविक धुरी का प्रारंभ गाँव से होना चाहिए क्योंकि ''वास्तविक भारत चंद शहरों में नहीं बल्कि सात लाख गाँवों में बसता है।'' यदि गाँधी जी की इस संकल्पना को हम अभिकल्पित अथवा स्वीकृत करते तो कृषक तथा कृषि दोनों ही स्वमेव समृद्ध और सक्षम होते। इस अवस्था में कृषि को कैसे विकसित करना है इसका निर्णय कृषक अथवा ग्राम पंचायते स्वयं ही करती और कृषि से संबंधित ऐसे निर्णय लेती जो उनकी कृषि के अनुकूल एवं हितकर होता।

परन्तु गाँधी जी की संकल्पना के अनुरूप शक्ति का केंद्र गाँव को न बनाकर संसदीय व्यवस्था में संसद को बनाया गया। इसलिए अनिवार्य है कि किसानों की दशा दिशा और दुर्दशा से संबंधित समस्त समस्याओं को दूर करने के लिए तीनों स्तर की सरकारें अपनी नीयत एवं नीतियाँ दोनों उनके लिए पवित्र रखें। राजनीतिक दलों के चुनावी घोरूरणा पत्र में कृषि सबंधित विषय मात्र चुनाव विजय हेतु न रखे जाएं बल्कि इनके प्रति चिंता एवं चिंतन किसानों के कल्याण को ध्यान में रख कर किया जाए तो इसमें किंचित् भी संदेह नही है कि कृषकों को उनकी वर्तमान दषा से उबारा न जा सकें।

सरकारों द्वारा तय की जाने वाली न्यूनतम समर्थन मूल्य (**MSP**) को ''लागत से अधिक'' और ''सबके लिए उपलब्ध'' किया जाए। जिससे न केवल कुछ फसलों का व्यवसायीकरण हो, बल्कि ''खाद्य पोषण'' भी सुनिश्चित हो। सरकार को ''खाद्यान्न श्रृखला'' को भी व्यवस्थित और पारदर्शी करने की आवश्यकता है। जिससे किसानों की समस्त उपज मध्यस्थों के हाथ में न जाकर प्रत्यक्ष सरकारी मंडियों तक पहुंचे। साथ ही साथ सरकारी मंडियों का प्रबंधन ''मुक्त बाजार'' के सिद्धांत पर होना चाहिए जो प्रतिस्पर्धा एवं वैश्वीकरण के लाभ किसानों को पहुंचाए।

सरकारी प्रयासों के अतिरिक्त समस्त भारतीयों को मनोवैज्ञानिक मंजन की भी आवश्यकता है। हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि कृषि और कृषक दोनों ही ''राष्ट्र की जीवन रेखा'' है। जितना मजबूत कृषि क्षेत्र होगा उतना ही चिरायु और स्थायी देश होगा।

जय–कृषि।
जय–जय किसान।

♦♦♦♦♦

2

वर्तमान परिदृश्य में भारतीय कृषक की स्थिति

राहुल शर्मा
एम. ए., राजनीति विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय

किसान समुदाय भारतीय समाज का वह बड़ा वर्ग है, जो दीर्घकाल से ही सामाजिक और आर्थिक स्तर पर उपेक्षित और वंचित रहा है, और वर्तमान में भी जिसकी स्थिति दयनीय ही है क्योंकि जिस देश में अन्न पैदा करने वाला, और पूरे देश का पेट भरने वाला स्वयं भूखा सोता हो, और असहज स्थिति में मानसिक तनाव में आकर आत्महत्या करता हो, ऐसे में परिस्थिति कितनी गंभीर है आप और हम भली–भांति समझ सकते है।

भारतीय कृषि की समस्या एक नही बल्कि कई हैं। इस सूची में आवारा मवेशियों की समस्या, किराये पर जमीन, किसान आत्महत्या, ओला वृष्टि, सूखे की समस्या, कृषि योग्य भूमि के बड़े भू–भाग का आज भी मानसून पर निर्भर होना, उचित मूल्य पर अच्छे बीज की आपूर्ति का कम होना, शीत भंडारण की समस्या, गुणवत्ता नियंत्रण प्रणाली कुशल न होना, फसल बीमा कवर का प्रभावी न होना, फसलों के प्रसंस्करण और अंतिम उत्पाद की पैकिंग, इसके अतिरिक्त कृषि विश्वविद्यालय की स्थिति भी कुछ ज्यादा ठीक नहीं है, जिसके कारण मिलावटी दवाई और दूषित जैविक खाद बाजार में दिखना शुरू हो गई है। इस समस्या सूची का कोई अंत नही है। आज हम यह देख रहे हैं कि किसानों की आत्महत्याओं का दौर आज तक नहीं थमा है और यह मुद्दा इतना बड़ा है कि जैसे ही चुनाव नजदीक आते है तो इस पर राजनीति शुरू हो जाती है। ऐसी स्थिति में राजनीति चाहे केंद्र की हो या राज्य सरकार की, यह विषय मूलविषयों की परिधि में ही रहता है।

आई.सी.ए.आर. ने कृषि विज्ञान केंद्र हर जिले में खोले हैं जो कृषि शिक्षा की समस्याओं को सुलझा रहे हैं और इनके साथ कई गैर–सरकारी संगठन व कृषि विश्वविधालय मिलकर कई उपलब्धि वाले कार्यों में कार्यरत हैं जिनमें से एक है किसान मेले का आयोजन, इस मेले को कई किसान किसान संगम के नाम से संबोधित करते हैं। कयोंकि इस मेले में किसान, विज्ञान, तथा सरकार का मिलन होता है परंतु फिर भी यह अपने आप में कुशलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं हो पा रहा है।

छोटे किसानों की लागतें घट नहीं रही है और नई तकनीकों व अविष्कारों तक इन किसानों की पहुंच नहीं हो पा रही है। आधुनिक कृषि उपकरणों की मांग व पूर्ति में अन्तर आज भी बना हुआ है। इसके साथ ही धीरे–धीरे हमारी मिट्टी की उर्वरक क्षमता कम होती जा रही है, और भूमिगत जल का स्तर भी कम होता जा रहा है। ऐसे में राज्य सरकार व केंद्र सरकार को मिलकर ही इसमें

प्रभावशाली नीतियों का निर्माण करना पड़ेगा ताकि कुछ सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकें। हाल ही में भारतीय किसान यूनियन द्वारा किसान क्रांति यात्रा शुरू की गई जो हरिद्वार से 23 सितंबर 2018 से आरम्भ हुई। इसके अंतर्गत किसानों की प्रमुख मांगों में स्वामीनाथन आयोग के फॉर्मूले के आधार पर किसानों की आय सी–2 लागत में कम से कम 50 प्रतिशत जोड़ कर दिए जाने की बात कही गयी। इसके साथ ही सम्पूर्ण फसल का कय सुनिश्चित करने, गन्ने की फसल का बकाया भुगतान ब्याज समेत 7 से 10 दिन के अंदर करने, किसान क्रेडिट कार्ड योजना में बिना ब्याज ऋण देने, पिछले 10 सालों में आत्महत्या करने वाले लगभग 3 लाख किसानों के परिवार को मुआवजा देने के साथ परिवार के एक सदस्य को नौकरी देने, किसानों का सभी प्रकार का कर्ज पूरी तरह माफ करने, महिला किसानों के लिए क्रेडिट कार्ड योजना अलग से बनाये जाने, किसानों को सिंचाई के लिए बिजली मुफ्त में उपलब्ध कराए जाने, दिल्ली–एनसीआर में दस साल से ज्यादा पुराने ट्रैक्टरों पर रोक हटाये जाने, आवारा पशुओं से किसानों की फसल को बचाने का प्रबंध किये जाने, के साथ प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में बदलाव करने की बात कही गयी, क्योंकि इस योजना में किसानों को लाभ मिलने के बजाए बीमा कंपनियों को लाभ मिल रहा है। उपरोक्त मे से तर्कपूर्ण मांगों को किसानों के अधिकारों के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है। किसानो के कल्याण हेतु जल्दी कदम उठाये जाने चाहिए।

समाधान के रूप में होना यह चाहिए कि कृषि बजट अलग से हो, उसे ग्रामीण विकास के साथ जोड़कर ना रखा जाए। किसान के बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, दुर्घटना बीमा आदि सभी महत्वपूर्ण विषयों को किसान सुरक्षा बिल के अंतर्गत लाया जाये, जिसमें आर्थिक व सामाजिक जीवन की सुरक्षा और उसकी गुणवत्ता अच्छी हो। छोटे किसानों का नुकसान कम हो इसके लिए सुझाव दिया जाता है कि वह अन्य छोटे–छोटे कार्यों को भी कृषि के साथ जोड़े जिसमें डेयरी उद्योग, पशुपालन, मत्स्यपालन आदि है। और उत्पादन की नवीन तकनीकों को स्थानीय क्षेत्रीय रणनीति के अनुसार मिलाया जाना चाहिए व इसी के साथ राष्ट्रीय कृषि विकास योजना को अभी और कुशलतापूर्वक कार्यन्वित करने की आवश्यकता है। सरकार द्वारा उचित एम.एस.पी की गारंटी दी जाये। भारत में कृषि उत्पादन की कमी नहीं है। कमी है, तो इस बात की कि उस उत्पादित मात्रा का कुशलतापूर्वक वितरण किस प्रकार किया जाए? आवश्यकता यह भी है कि इसका वितरण उस स्थान पर अधिक होना चाहिए जहां इसकी आवश्यकता अधिक हो। किसानों और सरकार के मध्य जो खाई बनी हुई है उसे समाप्त करने की आवश्यकता है। सबसे पहले यह जानने की जरूरत है कि किसान अपनी किस–किस जरूरत को पूरा करने में स्वयं से सक्षम है और किस जरूरत के लिए उसे सरकारी सहायता की आवश्यकता है।

वास्तविक रूप में हमारी कृषि के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण एक ठोस योजना व रणनीति का न होना और जो वर्तमान नीतियाँ या जो प्रणालियाँ अस्तित्व में है उनका क्रियान्वयन सही प्रकार से नहीं हो पाना है कर्जमुक्ति की समय–समय पर समीक्षा की जानी चाहिए परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए की यह कोई स्थायी समाधान नहीं है।

♦♦♦♦♦

3

भारतीय कृषकः समस्याएं एवं प्रशासन

राम किशोर
शोधार्थी, अफ्रीकी अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय कृषक को देखकर यह पक्ति स्वयं स्मर्ण हो जाती है ''सादा जीवन उच्च विचार, यह है देखो भारतीय किसान''। वास्तव में भारतीय कृषक भारतीयता का सच्चा प्रतिनिधि है, उसमें भारत की आत्मा निवास करती है। यह वास्तविकता है कि घोर परिश्रमी एवं सीधा सादा होने के बावजूद भी भारतीय कृषक की जीवन दशा बड़ी ही दुखद एवं चुनौतीपूर्ण है। ऐसा इसलिए कि उस पर कभी न कभी कोई न कोई प्राकृतिक आपदाओं के बादल मंडराया करते रहते हैं जैसे कभी अतिवृष्टि से तो कभी अनावृष्टि की मार से एवं उपलवृष्टि से तो कभी बाढ़ की चपेट कृषक को सहनी पड़ती है।

''भारत का हृदय गांवों में बसता है। गांवों में ही सेवा व परिश्रम के अवतार किसान बसते हैं। ये किसान ही नगरवासियों के अन्नदाता हैं। सृष्टि के पालक हैं। गाँवों की उन्नति से ही भारत की उन्नति हो सकती है।''
..........महात्मा गाँधी

प्राकृतिक आपदाओं के साथ–साथ भारतीय कृषक को कृत्रिम अर्थात सामाजिक आपदाएँ भी झेलनी पड़ती हैं। इस सन्दर्भ में यह कहना बहुत ही चिन्ताजनक है कि स्वतंत्रता के सात दशको पश्चात भी भारतीय कृषक के जीवन में कोई अपेक्षित परिवर्तन नहीं आया है। जहाँ एक ओर भारतीय कृषक हर प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त होकर निरुपाय हो उठता है, वहीं वह दूसरी ओर सामाजिक कुप्रभावों से बच नहीं पाता है। उसके जीवन में अशिक्षा, अभाव, संघर्ष, उपेक्षा, मुकदमेबाजी, शोषण, छल एवं दवाब आदि सामाजिक प्रकोप आकर उसे नारकीय जीवन जीने के लिए विवश कर डालते हैं।

भारतीय कृषक हमारी भारतीयता की सच्ची मूर्ति हैं। वह देश की रीढ़ हैं। वह हमारी अर्थव्यवस्था का प्राण है। इसलिए उसके जीवन दशा को अभी और ऊपर उठाना होगा। इसके लिए उसे सेठ–साहूकारों के चंगुल से मुक्त करना होगा। इस कार्य के लिए हमें उसके उत्पादों को सही मूल्य दिलाना होगा। सुलभ ऋण दिला करके उसे उन्नतशील खाद, बीज की व्यवस्था करनी होगी। इस तरह उसे पूरा आत्मनिर्भर बनाना होगा।

कृषि प्रधान देश के अन्नदाता की आँखों के आंसू प्रशासन एवं राजनीति को भले ही न दिख रहे हों, लेकिन वो अनवरत बह रहे हैं। इतने वर्षों के बाद भी भारत के अन्नदाता असहाय है, दूसरों पर आश्रित है। प्रकृति, राजनीति एवं प्रशासन से अकेला लड़ता हुआ बेबस, असहाय, घुटता हुआ,

मौत के मुंह में जाने को विवश। आज भी स्वतंत्रता के सात दशको पश्चात भी अधिकांश भारतीय कृषि इन्द्र देव के सहारे ही चलती है। कम वर्षा होने पर सूखा, कीमतों में वृद्धि, कर्ज का अप्रत्याशित बोझ, बैंकों के चक्कर, बिचोलियों एवं साहूकारों के घेरे में फँस कर छोटा कृषक या तो भूमि बेंचने पर मजबूर हैं या आत्महत्या की ओर अग्रसर हैं।

आधिकारिक आकलनों में प्रति 30 मिनट में एक कृषक आत्महत्या कर रहा है, इसमें छोटे एवं मझोले कृषक हैं, जो आर्थिक तंगी की दशा में अपनी जान गँवा रहे हैं। अगर आत्महत्या के मामलों की सघन जाँच की जाए, तो ऐसे कृषकों की संख्या ज्यादा निकलेगी जो मजदूर एवं शोषित वर्ग के हैं एवं जिनका भूमि पर स्वामित्व तो है, परन्तु उनकी भूमि किसी साहूकार एवं बड़े कृषक के पास गिरवी रखी है एवं वो बटहार का काम करते है। सरकारों के हर प्रयास के बाद भी आखिर छोटे एवं मँझोले कृषकों की दशा और दिशा में परिवर्तन क्यों नहीं आ रहा है? यह एक अनुत्तरित प्रश्न हम सभी के मस्तिष्क में उभरता है। इसका अगर विश्लेषण किया जाये तो प्रथमदृष्टया बात आती है कि सरकारी योजनाओं का वास्तविक क्रियान्वयन प्रशासन द्वारा नहीं किया जा रहा है।

कृषि विपणन व्यवस्था को सीमांत कृषकों के लिए उपयोगी बनाने की आवश्यकता है, ताकि कृषक बिचोलियों की मार से बच सकें। लघु एवं सीमांत कृषकों को सब्जी एवं फल उत्पादन के साथ–साथ टपक सिचांई प्रबंधन का समावेशीकरण कर कृषि को प्रोन्नत करने के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। पर्याप्त जल संसाधन होने के बाद भी कृषको के खेत सूखे क्यों रह जाते हैं? इसका मुख्य कारण जल के उचित प्रबंधन का अभाव है। जल प्रवंधन जैसे महत्वपूर्ण विषय पर आज तक सरकारें कोई ठोस कानून एवं योजनाओं का क्रियान्वयन नहीं कर पाईं है। ये चिंता का विषय है।

2006 में बनी स्वामीनाथन कमेटी ने सिफारिश की थी कि न्यूनतम समर्थन मूल्य, बाजार मूल्य का 50 प्रतिशत से अधिक होना चाहिए एवं इस 50 प्रतिशत की वृद्धि को कृषक का मेहनताना माना जाना चाहिए। परन्तु स्थिति बिलकुल अलग है। न्यूनतम समर्थन मूल्य एवं बाजार मूल्य में ज्यादा अंतर नहीं है, इस कारण कृषक को लाभांश नहीं मिल पा रहा है। लघु कृषकों की सबसे बड़ी परेशानी है पूँजी या लागत का न होना। अपने घरेलु जरूरतों से लेकर कृषि की लागत तक उन्हें पैसा चाहिए एवं इसके लिए वो साहूकार एवं कृषक क्रेडिट कार्ड पर निर्भर रहते हैं। कृषक क्रेडिट कार्ड से चूँकि सरलता से पैसा मिल जाता है, अतः इसका उपयोग वो कृषि की जगह अपने सामाजिक एवं घरेलु जरूरतों की पूर्ति में लगा देता है एवं पैसा खर्च होने के पश्चात कृषि की लागत के लिए साहूकारों के जाल में फंस जाता है।

वर्ष 1998 से लेकर 2009 तक करीब 3 करोड़ से ऊपर कृषक क्रेडिट कार्ड कृषकों को जारी किया जा चुके हैं एवं करीब 1 लाख 97 हज़ार करोड़ रूपये इन क्रेडिट कार्ड के द्वारा कृषको के पास कृषि संवर्धन के लिए पहुँच चुका है, लेकिन सरकार के पास इस बात का कोई सही तथ्यात्मक आंकड़ा नहीं है कि इतनी भारी राशि का कितना भाग कृषि लागत के रूप में प्रयोग

किया गया है। सरकारों को इस बात का नियंत्रण रखना चाहिए की कृषक क्रेडिट कार्ड के पैसों का उपयोग लघु कृषक खेती की लागत के रूप में ही करें ताकि वो अधिक पैदावार लेकर खुद पूँजी खड़ी कर सके।

सभी राजनीतिक दल चुनावी वादों में कृषकों के हितों को सर्वोपरि बताती हैं, लेकिन फसल की बर्बादी पर घड़याली आंसू बहा कर कृषकों को भुगतने के लिए अकेला छोड़ देती हैं जबकि पूरे भारत की विधान सभाओं एवं संसद में अधिकांश प्रतिनिधि कृषक परिवारों से हैं। कृषकों की आर्थिक एवं सामाजिक मांगों को लेकर कई कृषक मोर्चे एवं आंदोलन खड़े हुए लेकिन विडंबना ये है की इन सभी आंदोलनों का नेतृत्व समृद्धशाली कृषकों द्वारा किया जाता रहा है। जिस शोषित कृषक के हितों के लिए ये आंदोलन हुए हैं वो बेचारा भीड़ में गुम हो जाता है एवं उसके हित राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की भेंट चढ़ जाते हैं।

वर्ष 1991 के बाद से विश्व बैंक के निर्देशों पर भारतीय सरकारों ने अनुदान को कम करने एवं उत्पादनों को मंहगा करने की नीति अपनायी, दूसरी और विश्व व्यापार संगठन के खुले बाजार एवं खुले आयात की नीति के तहत कृषि उपज के सस्ते आयात ने भारतीय कृषक की कमर तोड़ दी है। बढ़ती कृषि लागत एवं कृषि उपज के घटते दामों के बीच भारतीय कृषक पिस रहा है। इस विकट स्थिति से मुंह मोड़ कर भारतीय सरकारें वैश्वीकरण से प्रभावित कथित सुधारों को लागू करने पर कटिबद्ध दिखाई दे रहीं हैं। नए बीज कानून का क्रियान्वयन करना, हदबंदी कानून को शिथिल करना, बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विपणन अधिकार देना, कांट्रेक्ट खेती की खुली छूट, खतरनाक तकनीकियों से खेती को अधिक लाभकारी बनाने की जिजीविषा लघु एवं सीमांत कृषकों को आत्महत्याओं की ओर धकेल रही है।

अगर खेती को पूँजी निर्माण का माध्यम बनाया जाता है एवं प्रकृति विरोधी तकनीकों का उपयोग कर कृषकों एवं मजदूरों से रोजगार छीना जाता है एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शिकंजे अगर भारतीय खेती पर कसे जाते हैं तो भारतीय लघु कृषक भविष्य में निश्चित ही गहन विपत्ति से गुजरने वाले हैं। भारत में विकास दर बढ़ाने का मूलमंत्र कृषि का विस्तार एवं विकास ही है, लेकिन यह विकास लघु एवं सीमांत कृषकों के हलों से निकलना चाहिए न की बहुराष्ट्रीय कंपनियों की पूंजी निर्माण करने वाली खतरनाक तकनीकों से होना चाहिए। कृषि प्रक्रिया को अधिक सरल एवं प्रभावशाली व उन्नत बनाने के लिए एवं लघु कृषकों के हितों को ध्यान में रख कर ठोस योजनाओं का जमीनी स्तर पर क्रियान्वयन सुनिश्चित होना चाहिए। तभी भारत का कृषक एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी एवं गरीब कृषक के आंसू मुस्कान में बदल सकेंगे।

◆◆◆◆◆

4

कोसी के किसानः दशा और दिशा

निशा कुमारी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

यह लेख उत्तरी भारत के कोसी बेसिन में आवासित किसानों की संघर्षरत परिस्थितियों तथा प्रक्रियाओं का अलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। सामान्य तौर पर कोसी के किसानों की अनेकों समस्याएं हैं परन्तु यह लेख विशेषकर बाढ़ नियंत्रण नीति तथा किसानों पर पड़ने वाले इनके प्रभावों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। कोसी के किसान से अभिप्राय विशेषकर उत्तरी बिहार तथा नेपाल में कोसी नदी क्षेत्र के किसानों से है। यह लेख अपने विशेष सन्दर्भ में मुख्य रूप से कोसी के भारतीय भाग से सम्बंधित है। नदियाँ मानव सभ्यता की जननी मानी जाती है। विश्व की सभी सभ्यताएं नदी के किनारे ही जीवन पा सकीं। नदी किनारे जल की उपलब्धता से कृषि हेतु योग्य परिस्थितियां उपलब्ध हुईं तथा कृषि का विकास संभव हुआ। कोसी नदी बेसिन भी प्राचीन काल से ही आवास और कृषि के लिए उपयुक्त स्थान रहा है। जल की उपलब्धता तथा नदियों द्वारा बहाकर लाई जाने वाले उपजाऊ मृदा ने यहाँ कृषि के विकास की अनुकूल स्थितियाँ प्रदान की। स्थानीय जन समुदाय इस स्थान की जलवायु की मांग के अनुसार स्वयं को ढालकर इनके साथ जीता आया और प्रकृति की सम्पदा के संतुलित उपभोग से अपनी आधारभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट करता रहा।

कृषि तथा किसानों की खुशहाल स्थिति का अनुमान इस क्षेत्र के लोगों द्वारा पारंपरिक रूप से गाये जाने वाले स्थानीय मैथिलि गीत की पंक्तियों –'ऐल बलान तो बंधलौन दलान, गैल बलान त टूटलई दलान' से लगाया जा सकता है, जिसका अर्थ है कि जिस वर्ष बाढ़ आती है उस वर्ष हमारे दलान अर्थात् आँगन फसलध्अन्न से भरे रहते है और जिस वर्ष बाढ़ नही आती उस वर्ष हमारे दलान खाली रह जाते हैं। बाढ़ से उपजाऊ मिट्टी एक विशाल क्षेत्र तक पहुँचकर खेतों को उपजाऊ बनाती थी तथा जल स्तर को समृद्ध करती थी जिससे अच्छी फसल का उत्पादन होता था परन्तु बाढ़ से सुरक्षा के नाम पर बाढ़ नियंत्रण की तटबंध तथा बाँध निर्माण की तकनीकों तथा नीतियों के परिणामस्वरूप आज यहाँ के किसानों की वर्तमान स्थिति दयनीय हो गयी है।

गौरतलब है कि कोसी नदी आज उत्तरी बिहार के शोक की उपमा प्राप्त कर चुकी है। कोसी नदी द्वारा प्रतिवर्ष लायी जाने वाली बाढ़ से होने वाली क्षति, जान–माल, कृषि भूमि, फसलों तथा किसान की दयनीय दशा आज इस क्षेत्र की सूचक बन गई हैं। बाढ़ नियंत्रण के नाम पर जिन तटबंधों का निर्माण किया गया वह जहां बाढ़ से सुरक्षा प्रदान करने में पूरी तरह असफल हुऍ है, वहीं स्थानीय किसानों की सम्पन्नता को दयनीय दशा में परिवर्तित कर दिया है। तटबंध के निर्माण से कंट्रीसाइड के क्षेत्रों में बाढ़ के पानी को रोकने के प्रयास के परिणामस्वरूप क्षेत्र में

अब पानी के प्रवेश न होने के कारण भूमि की उर्वरकता घटी है। जो कोसी क्षेत्र मुख्य रूप से गरमा के धान की खेती करता आया था तथा मछली के साथ मुख्य रूप से गरमा के चावल का सेवन करता आया था, वह आज अपनी आधारभूत आवश्यकता की पूर्ति के लिये पलायन को विवश है। कृषि के लिहाज से बाढ़ पर आश्रित समाज को बाढ़ नियंत्रित करने की राज्य की नीतियों ने बाढ़ पीड़ित क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया है। कोसी बेसिन के क्षेत्र को बाढ़ आश्रित से बाढ़ पीड़ित क्षेत्र में हुए जिसका वर्णन रोहन डेसोजा ने अपनी पुस्तक ड्रोन्ड एंड डैम्डः कोलोनियल कैपिटलिज्म एंड फ्लड कण्ट्रोल इन ईस्टर्न इंडिया (2006) में किया है। वह बताते हैं कि ब्रिटिश उपनिवेशी राज्य भारत में बाढ़ नियंत्रण का विचार अपने राजनितिक एजेंडा के तहत व्यवहार में लाया। ताकि वह इनके माध्यम से स्थानीय लोगों को अनुशासित कर सकें तथा विशेष आर्थिक तथा सामाजिक संबंधों का निर्माण कर सकें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय राज्य द्वारा ब्रिटिश उपनिवेश की बाढ़ नियंत्रण की नीति में निरंतरता देखने को मिलती है। जिसे सत्यजीत सिंह अपनी पुस्तक 'टेमिंग द वाटरः पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ लार्ज डैम्स इन इंडिया' में भी बताते हैं। बाढ़ नियंत्रण के नाम पर तटबंध तथा बांध ाों का निर्माण आज वहाँ हर प्रकार से स्थिति को बिगड़ता जा रहा है। जो बाढ़ का पानी तटबंध ा निर्माण के पूर्ण 3–4 दिन में बहकर निकल जाता था वह अब महीनों तक जम रहता है जिससे निरंतर जल जमाव की समस्या बनी रहती है। किसान आज पलायन करने को मजबूर है। रिवरसाइड की कृषि भूमि प्रतिवर्ष व्यापक तौर पर बाढ़ द्वारा लायी जाने वाली बालू से पट जाती है जिससे यह क्षेत्र कई वर्षों से कृषि के लिहाज से बहुत उपयोगी नहीं रहा तो परिस्थितिवश किसान को पलायन का रास्ता अपनाना पड़ता है। इस प्रकार स्थानीय जीवन तथा प्रकृति के बीच के संबंधों में हुए राज्यीय हस्तक्षेप ने बाढ़ को वरदान से बदलकर अभिशाप का रूप दे दिया है जिसका सबसे ज्यादा प्रभाव छोटे तथा गरीब किसानों पर पड़ा है यद्यपि बड़े किसान भी इससे अछूते नही हैं। वर्षों तक नहरों की सफाई नहीं हो पाती तथा धान की खेती के लिए वर्षा पर आश्रित रहना यहाँ के किसानों की विवशता बन गयी है।

इतना तो स्पष्ट है कि बाढ़ नियंत्रण की नीति क्षेत्र में समस्याएं ज्यादा उत्पन्न कर पाई है समाध ाान कम। ऐसे में आवश्यकता है कि बाढ़ नियंत्रण के तकनीकी समाधान के स्थान पर बाढ़ से समायोजन स्थापित करने की प्रक्रियाओं पर ध्यान दिया जाये तथा प्रतिवर्ष तटबंध के रख–रखाव तथा बढती ऊचाई के नाम पर किये जाने वाले प्रयासों के स्थान पर प्रकृति के साथ–साथ जीवन जीने की कला को सरकारी नीतियों के माध्यम से प्रात्साहित किये जाने की दिशा में कदम उठाएं जायें।

♦♦♦♦♦

5

आंदोलित अन्नदाता

सृष्टि
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

यद्यपि किसानों की स्थिति से जुड़े प्रश्न दशकों से बने हुए हैं, ऐसे में राजधानी में हुए किसान प्रदर्शनों ने कई प्रश्न नीति निर्माताओं और राजनीतिक दलों के सामने छोड़े हैं जिनके उत्तर उन्हें खोजने हैं। किसान देश के सवा अरब से अधिक लोगों का अन्नदाता है और उसकी खेती की दिनचर्या सर्दी हो, गर्मी हो, चाहे बरसात हो पूरे वर्ष एक सी रहती है। ऐसे में यह अनिवार्य हो जाता है कि उन्हें उनकी दयनीयता से निकालने के ठोस व दीर्घकालिक उपाय किए जाएं।

किसान पहले से भी संघर्षरत रहे हैं, सभी सरकारों ने उनके साथ अपेक्षित व्यवहार नहीं किया है। परंतु आज किसान का संघर्ष व्यापक बना हुआ है। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र सहित बाकी राज्य में किसान अपने प्रश्नों को लेकर संघर्ष कर रहे हैं। कहीं विधानसभा, कहीं स्थानीय प्रशासन का घेराव,कभी प्रधानमंत्री से मिलने के लिए महीनों किसान दिल्ली की सड़कों पर भटकते रहे हैं मगर इस बार देश के किसान नेताओं ने सभी छोटे–बड़े किसान संगठनों को एकजुट कर अनोखा और सफल प्रयोग किया है जिसमें वामपंथी दल और अन्य दलों के भी किसान संगठन भी समाहित हुए हैं। जिसके माध्यम से वे कृषि उपजों के दाम स्वामीनाथन समिति की सिफारिशों के आधार पर तय करने, इनकी अनुशंसाओं को लागू करने व ऋण माफ करने के विषयों पर संसद का विशेष सत्र बुलाकर निर्णय करने की मांग कर रहे हैं

आंदोलित किसान चाहते हैं कि उनसे संबंधित दोनों व्यक्तिगत विधेयकों को संसद पास करें, जिससे किसानों की कई तरह की समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। किसानों के पास क्षमता और ऊर्जा की कोई कमी नहीं है। अलाभ की खेती के पश्चात भी वह निरन्तर कृषि कार्य में लगा हुआ है क्योंकि उसके पास जीवन यापन की दूसरी कोई व्यवस्था नहीं है। इस स्थिति में यदि उन्हें सरकार द्वारा उचित सहयोग मिला होता तो आज किसान आत्महत्या को विवश नहीं होते।

किसान सरकारी व्यवहार से निराश है। बजट में खेतिहरों की 65 फीसदी आबादी को नजरअंदाज कर बजट का मात्र दो प्रतिशत ही कृषि पर खर्च करने का सवाल उठाया गया है स्वयं कृषि विभाग के संसदीय समिति ने नोटबंदी से किसानों के प्रभावित होने और यहां तक कि पैसे के अभाव में सरकारी बीज नहीं बिकने का आंकड़ा दिया है। इस स्थिति में किसानों की आय दोगुनी

करने की बात हास्यास्पद बन गई है। किसान संगठनों ने सवाल उठाया है कि जब पिछले 4 वर्षों में किसानों की आय में 2.2 फीसद का इजाफा हुआ तो किसानों की आय दोगुनी करने के लिए 10:30 प्रतिशत आय बढ़ानी होगी। इस बार किसानों की एकजुटता राजनीति को भी प्रभावित कर रही है।

लेकिन यह भी तय है कि किसानों की यह मांग नाम मात्र की राहतें ही देंगी जैसे कि बार बार देखा गया है लेकिन पिछली सरकारों ने भी किसानों के कर्ज माफ किए थे और कृषि उत्पाद के समर्थन में भी कई बार भारी इजाफा किया लेकिन उससे न कृषि की बदहाली रुकी और नही किसानों की आत्महत्याएँ रुकी, क्योंकि कृषि उत्पाद की कीमतें इतनी नहीं बढ़ती जितनी खाद, बीज तथा ईंधन आदि की कीमतों में वृद्धि हो जाती है। इसका अर्थ है कि कृषि उत्पाद की कीमतें बढ़ाने से अधिक उद्योग आधारित कीमतों और संगठित क्षेत्र का वेतन घटाना आवश्यक है

अंततः कहा जा सकता है कि किसानों की काफी लंबे समय से की गई उपेक्षा और व्यवहारिक कृषि नीतियों के दुष्परिणामों ने व्यापक असंतोष पैदा किया है किसानों के उनकी उपज का उचित मूल्य मिले इसको सुनिश्चित करना ही होगा इसमें राज्य और स्थानीय प्रशासन की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है, एवं जहां तक कर्ज माफी का सवाल है उसे लेकर एक राय कठिन है सभी किसानों के कर्ज माफी का बोझ अर्थव्यवस्था के लिए संकट पैदा कर सकता है किसानों की दशा ऐसी हो ही ताकि वे आराम से कर्ज़ चुका सके किसानों की समस्याएं इतनी जटिल हो चुकी है कि उनका समाधान आसान नहीं कोई सरकार न तो सारी फसलें खरीद सकती है और नहीं संपूर्ण कर लगातार माफ कर सकती है इसके लिए राजनीतिक आग्रह–दुराग्रह से परे उठकर विचार करना होगा गांव में कृषि श्रमिकों का सबसे बड़ा संकट है इससे किसान बेहद परेशान है।

♦♦♦♦♦

6

संघर्षरत कृषक और आरक्षण की नई मांग

शंभुराज प्रभाकर शिंदे
एम ए, राजनीति विज्ञान, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विगत कुछ वर्षों में किसान मुक्ति मोर्चा और राज्य स्तर पर लिए आरक्षण की मांग को लेकर हुए आंदोलनों में बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए लोगों ने अपनी बड़ी ताकत दिखाई है। हाल के दिनों में हुए ये आरक्षण विषयक आंदोलन कृषि की मूल समस्या से जुड़े हुए हैं। इस लेख का उद्देश्य आरक्षण की मांग पर सही या गलत पर टिप्पणी करने नहीं है, अपितु इन आंदोलनों के बीच एक अंतःक्रिया को खोजने का प्रयास किया गया है।

भारत विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था है। हालांकि सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का हिस्सा घट गया है, फिर भी लगभग आधे से अधिक लोग कृषि पर ही निर्भर हैं। कृषि क्षेत्र की समस्याएं बढ़ रही हैं और पिछले कुछ वर्षों में यह प्रश्न बहुत गंभीर हो रहा है । इस संबंध में, देशभर के लगभग 180 किसान संगठनों ने दिल्ली में एक केंद्रीय संगठन अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति के माध्यम से किसान मुक्ति मोर्चा का आयोजन किया। इससे पता चलता है कि पूरे देश के किसान संघर्षों में सम्मिलि हो रहे हैं।

दूसरी ओर, देश भर के विभिन्न समाजों द्वारा शिक्षा और सरकारी नौकरी में आरक्षण की मांग हो रही है। आंध्र प्रदेश में कापू, हरियाणा में जाट, महाराष्ट्र में मराठा और राजस्थान में गुर्जर समुदाय द्वारा अलग अलग तरीकों से अपनी मांग के समर्थन में प्रदर्शन हो रहे हैं। कभी कभी इन आंदोलनों ने हिंसक रूप भी धारण किया है। वही महाराष्ट्र में साइलेंट मार्च के माध्यम से मराठा समुदाय ने आरक्षण की मांग की है।

इन सभी आरक्षणों के आंदोलनों में कुछ समानता है। सबसे पहले, आंदोलन करने वाले समुदाय में अधिकांश लोग अभी भी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। इन समुदायों की पारंपरिक सामाजिक परिस्थितियां सामान्य थीं और इन समुदायों की आबादी भी बड़ी है। इस प्रकार इन सभी समाजों के आरक्षण की मांग का मुख्य कारण कमजोर वित्तीय स्थिति है। कृषि क्षेत्र पर निरंतर आनेवाली आपत्तियों के कारण वित्तीय स्थिति तथा शिक्षा व रोजगार की समस्याओं के परिणामस्वरूप ये आंदोलन हो रहे हैं।

हमारे देश में, पिछले कुछ दशकों में जनसंख्या में बड़ी वृद्धि हुई है। यद्यपि देश में कृषि भूमि की सीमित उपलब्धता है। इस कारण भूमि विभाजन की एक नई समस्या खड़ी हुई है। आज परिवार में भूमि विभाजन के कारण किसान छोटे किसान की श्रेणी में परिवर्तित हो रहे हैं।

परिणामस्वरूप, भूमि के छोटे भागों पर खेती करना संभव नहीं है। इसके साथ–साथ जलवायु परिवर्तन, अपर्याप्त सिंचाई, ऋण प्राप्त करने में समस्याएं, और विपणन प्रणाली के दोषों के कारण किसान पीड़ित हैं। आखिरकार किसान की आय में गिरावट उसे निराशा की ओर ले जाती है और किसान आत्महत्या की संख्या में वृद्धि का खतरा होता है। कुछ लोगों का कहना है कि इन समुदायों की राजनीतिक सहभागिता देखते हुए उनके आरक्षण की मांग व्यर्थ है। किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि इस समुदाय के कुछ प्रतिशत लोगों को ही सत्ता में रहने का अवसर मिला है। अधिकांश समुदाय अभी भी कृषि पर ही निर्भर हैं। इन नेताओं (अपवादों को छोड़कर) के द्वारा उनके समाजों के उन्नयन के लिए कितने प्रयास किए गए हैं। यह भी परिचर्चा का विषय हो सकता है।

अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति ने नई दिल्ली में किसान मुक्ति मोर्चा के माध्यम से कृषि समस्याओं को हल करने के लिए संसद का एक विशेष सत्र आयोजित करने की मांग की है। यह मांग सही है और इस सत्र में अन्य समस्याओं के साथ क्या समूह खेती के प्रकल्पों को प्रोत्साहित करने से खेती में भूमि विभाजन की समस्या का समाधान हो सकता है? इस विषय को लेकर परिचर्चा होना आवश्यक है। कृषि क्षेत्र में बुनियादी सुविधा का निर्माण करने के अतिकिक्त कृषि वैज्ञानिक तरीके से करने हेतु आधुनिक तकनीक और सामग्री का प्रावधान करना आवश्यकता है। व्यापारियों की श्रृंखला को कम करके न्यूनतम समर्थन मूल्य की गारंटी देने की भी आवश्यकता है।

गांव में कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना करके बढ़ती जनसंख्या को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जा सकते है। इससे किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार आकर उनकी सरकारी–निर्भरता नौकरी की मांग कम हो जाएगी। और किसानों के बच्चों को गुणवत्ता पूर्ण उच्च शिक्षा भी मिल सकती है। राज्य सरकारों को भी राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों (आई.आई.टी., आई.आई.एम.) आदि और विशेषज्ञों के सहयोग से शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे।

शिक्षा में बढ़ती लागत के मद्देनजर आर्थिक स्थिति और गुणवत्ता के आधार पर छात्रवृत्ति, फ्रीशिप के लिए भारी राशि का आवंटन किया जा सकता हैं। विशेष रूप से यदि कृषि शिक्षा और अनुसंधान की गुणवत्ता में सुधार होता है तो यह कृषि में बहुत मददगार साबित होगा। भारत की विशाल क्षमता को ध्यान में रखते हुए उद्यमिता विकास के लिए (विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र मे कृषि आधारित उद्योग) एक साथ समाज के सभी घटक और सरकार के साझा प्रयासों से नीति तय की जा सकती हैं।

यदि ये उपाय कृषि क्षेत्र की समस्याओं को हल करते हैं तो किसानों की वित्तीय स्थिति में सुधार होगा। इस कारण आर्थिक आधार पर आरक्षण के मांग की तीव्रता भी कुछ हद तक कम हो जाएगी। और किसानों को भी आंदोलन का रास्ता अपनाना नहीं पड़ेगा। राजनीतिक दलों और सामाजिक संगठनों को भी आरक्षण के मुद्दे के राजनीतिक उपयोग का विरोध करते हुए प्रभावी

समाधान के लिए चर्चाओं में भाग लेने और मौलिक योगदान करने की आवश्यकता है। आरक्षण किसे कितना और कब मिलना चाहिए इन मुद्दों को भी परिचर्चा में सम्मिलित किया जाना चाहिए तो परिचर्चा को भी व्यापक प्रारूप प्राप्त होगा।

जब तक कृषि की आधारभूत समस्याओं का हल नहीं होता हैं तब तक किसान खुशहाल नहीं होंगे और यह स्थिति निश्चित रूप से सामूहिक प्रयासों द्वारा बदली जा सकती है।

♦♦♦♦♦

7

एम. एस. स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें एवं कृषक असंतोष

प्राची राज
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

हाल के दिनों में पूरे देश के अलग–अलग हिस्सों से किसान आंदोलन की गूँज सुनाई दे रही है। कुछ दिनों पहले मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, दिल्ली आदि राज्यों में किसानों ने विभिन्न किसान संगठनों के बैनर तले अपनी माँगों को लेकर धरना–प्रदर्शन किया। कुछ इसे किसानों की सरकार से स्वाभाविक नाराजगी कहा है तो कुछ इसे राजनीति से प्रेरित आंदोलन का नाम दे रहे हैं। फिर भी इस देश में यह आम राय है कि किसानों की स्थिति ठीक नहीं है। कृषि अब कोई लाभदायक व्यवसाय नहीं रह गया है। किसानों की आमदनी में लगातार गिरावट हो रही है तथा कई लोग कृषि को छोड़कर अन्य व्यवसायों को अपना रहे हैं। खेती करना या किसान कहलाना अब भारत जैसे कृषि–प्रधान देश में प्रतिष्ठा का विषय नहीं रहा।

आजादी के बाद जमींदारी उन्मूलन, हदबंदी और चकबंदी जैसे भूमि सुधार कार्यक्रमों तथा 60 के दशक के अंतिम दौर में हरित–क्रांति के माध्यम से देश में किसानों की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया गया। इससे एक हद तक भारतीय कृषि का आधुनिकीकरण भी हुआ और कृषि–उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि भी देखने को मिली। देश के कई राज्यों में किसानों की आमदनी में भी काफी वृद्धि हुई। हालाँकि भूमि सुधार कार्यक्रमों एवं हरित क्रांति को देश में कृषि की हालत को सुधारने में सीमित सफलता मिली थी, परन्तु देश में किसानों की स्थिति उतनी दयनीय नहीं थी, जितनी 90 के दशक में उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के बाद हुई।

उदारीकरण के समर्थकों ने तो तब दावा किया था कि बाजार के प्रभाव की वजह से फसलों की कीमतें बढ़ेंगी और इनका प्रत्यक्ष लाभ किसानों को मिलेगा। उन्होंने यह भी दावा किया था कि इससे भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण में तेजी आएगी। हरित क्रांति के बाद से ही कृषि की लागत में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। उदारीकरण की प्रक्रिया के बाद यह लागत और बढ़ गई। आनुवांशिक बीजों के आगमन से कीटनाशकों एवं उर्वरकों का उपयोग बढ़ा। उसका सीधा असर मिट्टी की उत्पादकता पर पड़ा। फसल उत्पादन बढ़ाने की नवीन तकनीकों ने किसानों के लिए खेती करना महँगा बना दिया। इससे कृषि ऋण में वृद्धि हुई। कभी प्राकृतिक कारणों के कारण फसल अच्छी न होने के कारण तो कभी फसल की अच्छी कीमत न मिलने के कारण किसान इन ऋणों को लौटाने में असमर्थ होने लगे। उनपर कर्जे का बोझ का बढ़ने लगा। ये ऋण उन्होंने या तो बैंकों से लिए थे या स्थानीय महाजनों से। सरकारी बैंकों से लिए जाने वाले ऋण का आँकड़ा तो सरकार के पास होता है, परन्तु स्थानीय महाजनों से लिए जाने वाले कर्जों का कोई विश्वसनीय आँकड़ा अभी तक उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में किसानों के आंदोलन या असंतोष

को देखते हुए कई बार सरकारें सरकारी बैंकों से लिए गए कृषि ऋण को माफ कर देती हैं लेकिन स्थानीय महाजनों से लिए कर्जों से किसानों को राहत दिलाने का उनके पास कोई कारगर उपाय नहीं है।

बढ़ती लागत और बढ़ते ऋण के बोझ से 90 के दशक के बाद देश में किसानों की आत्महत्या की घटनाएँ होने लगी। कृषि–प्रधान देश कहे जाने वाले भारत के लिए निःसंदेह यह चिंताजनक बात थी। खासकर तब जब यह दावा किया जा रहा था कि बाजार कृषि को बढ़ावा देगा। इसमें भी उदारीकरण के समर्थकों के लिए सबसे चिंतित करने वाली बात यह थी कि आत्महत्या करने वाले ज्यादातर किसान नकदी फसल जैसे–कपास या गन्ना के उत्पादन से जुड़े थे। साथ ही यह आत्महत्या उन राज्यों में हो रही थी, जहाँ कृषि–आधारित उद्योग स्थापित थे। वास्तव में चाहे वो हरित क्रांति हो या 90 के दशक के बाद उदारीकरण, वैश्वीकरण और बाजारीकरण का दौर, हर दौर में किसानों की जगह बहुराष्ट्रीय कंपनियों को ही कृषि से लाभ मिला। सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसे उपाय भी किसानों के काम नहीं आए।

स्वामीनाथन आयोग की सिफारशें

किसानों के बदतर होते हालत को सुधारने के लिए केंद्र सरकार ने नवंबर, 2004 में हरित क्रांति के जनक एम एस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय किसान आयोग का गठन किया, जिसे स्वामीनाथन आयोग भी कहा जाता है। दो सालों बाद सन् 2006 में स्वामीनाथन आयोग ने केंद्र सरकार को अपनी रिपोर्ट भी सौंप दी। इन दो सालों में स्वामीनाथन आयोग ने कुल 6 रिपोर्ट केंद्र सरकार को सौंपी। इस रिपोर्ट में किसानों और कृषि की हालत को सुधारने के लिए कई सिफारिशें की गई थीं। वर्तमान समय में किसान संगठनों की सबसे प्रमुख माँग स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों को लागू करना है।

स्वामीनाथन आयोग ने जो प्रमुख सिफारिशें की हैं वे इस प्रकार हैं–

• फ़सल उत्पादन की लागत मूल्य से पचास प्रतिशत ज़्यादा दाम किसानों को मिलें। फिलहाल सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण किया जाता है। इस न्यूनतम समर्थन मूल्य से किसानों वो लाभ नहीं मिल पाता, जिससे वो सही से जीवनयापन कर सकें। स्वामीनाथन आयोग ने इसलिए ही किसानों द्वारा फसल–उत्पादन में लगे लागत से पचास प्रतिशत ज्यादा मूल्य देने की अनुशंसा की है। अगर यह अनुशंसाएं लागू होती है तो इससे किसानों की आय में बड़ी बढ़ोतरी होगी।

• किसानों को उन्नत किस्म के बीज कम दामों में उपल्बध कराए जाएं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा फसलों के बीजों का मनमाना दाम वसूला जा रहा है। आनुवांशिक बीजों के आने के बाद हर साल किसानों को नया बीज खरीदना पड़ता है और इसके लिए वे बीज कम्पनियों पर निर्भर हैं। पहले किसान उत्पादित फसल के ही एक हिस्से को बीज के रूप में संरक्षित कर लेते थे

लेकिन आनुवांशिक बीजों से उत्पादित फसलों में यह संभव नहीं है।

• कृषि को समवर्ती सूची में डाला जाए। वर्तमान समय में कृषि राज्य सूची में है यानी राज्य सरकारें ही इस पर कानून बना सकती हैं और कृषि संबंधित नीतियों को अंतिम रूप दे सकती हैं। परन्तु वर्तमान समय में कृषि की हालत सुधारने के लिए एक समन्वित नीति की आवश्यकता है इसलिए कृषि को समवर्ती सूची में डाला जाना चाहिए ताकि आपद–स्थिति में केंद्र सरकार भी किसानों के हित में कोई निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हो।

• गांवों में किसानों की मदद के लिए विलेज नॉलेज सेंटर या ज्ञान चौपाल बनाया जाए।

• महिला किसानों के लिए किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए जाएं। भारत में कृषि कार्य में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों से कम नहीं होती है लेकिन किसान क्रेडिट कार्ड अधिकतर पुरुषों के ही नाम से जारी होते हैं। इसकी मूल वजह यह है कि जमीन पुरुषों के नाम पर ही होता है। घटती आमदनी की वजह से कृषक परिवारों में से पुरुषों का पलायन बढ़ा है जबकि महिलाएँ गाँव में ही रहकर खेती कर रही हैं। लेकिन जमीन ऐसी महिलाओं के नाम पर न होने की वजह से उन्हें किसान क्रेडिट कार्ड नहीं दिया जाता।

• किसानों के लिए कृषि जोखिम फंड बनाया जाए, ताकि प्राकृतिक आपदाओं के आने पर किसानों को मदद मिल सके।
अधिशेष और कृषि कार्य में प्रयोग नहीं हो रही जमीन के टुकड़ों का वितरण किया जाए।

• कृषि–योग्य भूमि और वनभूमि को गैर–कृषि उद्देश्यों के लिए निजी कंपनियों को न दिया जाए। फसल बीमा की सुविधा पूरे देश में हर फसल के लिए मिले।

• सरकार की मदद से किसानों को दिए जाने वाले कर्ज पर ब्याज दर कम करके चार फीसदी किया जाए।

• कर्ज की वसूली में राहत, प्राकृतिक आपदा या संकट से जूझ रहे इलाकों में ब्याज से राहत हालात सामान्य होने तक जारी रहे।

अगर स्वामीनाथन आयोग की इन प्रमुख माँगों को मान लिया जाए तो देश में किसानों की हालत सुधर सकती है। स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें भारतीय किसानों और भारतीय कृषि को आत्मनिर्भर बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इसी कारण सभी किसान संगठन इन सिफारिशों को लागू करने की माँग कर रहे हैं।

♦♦♦♦♦

8

संघर्ष से समन्वय की ओर कृषक समुदायः एक प्रतिमान

पंकज
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

समकालीन भारतीय राजनीति में अधिकतर संवाद केवल समस्याओं के आलोचनात्मक विश्लेषण तक सीमित है। जिसमें विकल्पों एवं सुधारात्मक अध्ययन की भूमिका सीमित हो जाती है। आलोचक अध्ययनकर्ता यह भूल जाता है कि सुधारहीन और विकल्पहीन विश्लेषण एक अधूरा अध्ययन है। भारतीय कृषि एवं कृषकों के समकालीन संघर्ष को भी विभिन्न विद्वानों ने अनेक पद्धतियों के माध्यम से भारतीय राजनीति में अध्ययन किया है। परंतु इसमें अधिकतर विकल्पों एवं सुधारात्मक पक्ष के अभाव को परिलक्षित करते है। इसलिए इस लेख का मुख्य उद्देश्य कृषि और कृषक का राज्य, समाज एवं अर्थव्यवस्था से समन्वय स्थापित करने के लिए एक प्रतिमान प्रस्तुत करना है। इसके अलावा यह लेख संघर्ष की बजाय समन्वय पर केंद्रित है जो मुख्यतः विकल्पों एवं संभावनाओं पर बल देता है। समकालीन किसान संघर्षों की प्रकृति के आधार पर देखा जाए तो त्रिस्तरीय सुधार की आवश्यकता है। प्रथम राज्य– बाजार केंद्रित सुधार द्वितीय बाजार केंद्रित सुधार एवं अंतिम किसान समुदाय केंद्रित सुधार।

राज्य–बाजार केंद्रित सुधारो और विकल्पों को देखा जाए तो इसे द्विस्तरीय रूप से विश्लेषित किया जा सकता है। प्रथम राज्य की प्रत्यक्ष भूमिका से जुड़ा है जबकि द्वितीय राज्य और बाजार दोनों की समन्वयकारी भूमिका पर बल देता है। कृषि के प्रति भारतीय राज्य की प्रत्यक्ष भूमिका में मुख्य सुधार दृष्टिकोण पक्ष पर आधारित है। भारतीय राज्य ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कृ षि में शीर्ष पद दृष्टिकोण को अपनाया। जिसके कारण राज्य की कार्यनीति में वास्तविक कृषक की सक्रिय भूमिका सुनिश्चित नहीं हो पाई। इसलिए राज्य की कृषि नीतियों जैसे जमीदारी उन्मूलन, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, हरित क्रांति आदि का लाभ केवल सीमित कृषक समुदाय तक ही पहुंच पाया। जिसके कारण वास्तविक धरातल पर इसके परिणाम नहीं मिल पाए। इसलिए राज्य को चाहिए कि वह नीति– निर्माण से कार्यान्वयन तक के लिए तल– अप दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। जिससे वास्तविक कृषक समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित हो पाए। 2015 से नीति आयोग के द्वारा भी इसी दृष्टिकोण के अनुसार भारतीय नीतियों को निर्धारित करने का निर्णय लिया है। परंतु यह अभी वास्तविक धरातल पर नहीं उतर पाया है। द्वितीय भारतीय राज्य की वर्तमानकालीन नीतियां मुख्यतः भूमि अधिग्रहण पर बल देती है, जबकि भूमि– सुधार का विषय राज्य की कार्यनीति में परिलक्षित नहीं हो पाता है। वास्तव में भूमि– सुधारों के अभाव से ग्रामीण स्तर का सामंतवादी ढांचा आज भी काफी शक्तिशाली है और इस सामंतवादी ढांचे की उपस्थिति के कारण राज्य कृषि में एक पारदर्शी विपणन व्यवस्था को स्थापित नहीं कर सकता है। इसलिए राज्य की व्यवस्थात्मक प्रक्रिया में भूमि– सुधारों को पुनः कार्यान्वयन करना चाहिए।

राज्य बाजार संबंधी सुधारों में दूसरा विषय कृषि बाजार व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। जिसमें कृषि उत्पादन विपणन समिति की भूमिका महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसी अधिनियम के द्वारा थोक विक्रेता और खाद्य निगमों को लाइसेंस दिया जाता है। इसमें महत्वपूर्ण कमी यह देखने को मिलती है कि मंडी में लाइसेंस केवल उन्हें दिया जाता है जिन्हें राजनीतिक रूप से संरक्षण प्राप्त है। इसलिए बिचौलियों की भूमिका कृषि बाजार– व्यवस्था में कायम हो जाती है। इससे कृषि उत्पादन का उचित मूल्य उत्पादनकर्ता और उपभोक्ता को प्राप्त नहीं हो पाता है। इसलिए राज्य को बाजार– व्यवस्था में सुधार के लिए एक ऐसी व्यवस्था कायम करनी चाहिए। जिसमे उत्पादनकर्ता और उपभोक्ता को प्रत्यक्ष रूप से जोड़ा जा सके। जिसमें सार्वजनिक– निजी प्रतिमान महत्वपूर्ण होगा। इसमें यह एक सहकारी व्यवस्था के रूप में कार्य करेगा। जैसा दुग्ध उत्पादन निगमों के द्वारा अपनाया गया है।

समाज केंद्रित सुधार

भारत में कृषि और समाज का गहरा संबंध रहा है। हाल के कृषि संकट ने समाज में संघर्ष को जन्म दिया है। इसलिए राज्य स्तर के साथ– साथ समाज के स्तर पर भी कृषि को लेकर सुधारों की आवश्यकता है। समाज में दो तरह के सुधारों की आवश्यकता है। प्रथम समन्वयवादी, द्वितीय रूपांतवादी, समन्वयवादी पक्ष मुख्यतः समाज के परंपरागत और आधुनिक तकनीक को स्वीकार करने से संबंधित है। जिसमें देखा गया है कि कृषि में एक वर्ग परंपरागत तकनीक पर बल देता है। जबकि दूसरा वर्ग पूर्णतः आधुनिक तकनीक को बढ़ावा देता है। वास्तव में इस संघर्ष के बजाय कृषि में परंपरागत– आधुनिक तकनीक के सामंजस्य पर जोर देते हुए मध्यमार्ग को अपनाने की आवश्यकता है। जिसमें परिस्थितियों के अनुकूल किसी भी तकनीकी पक्ष को अपनाया जा सकता है और कृषक समाज को यह संघर्ष की बजाय समन्वय की ओर ले जाता है। द्वितीय रूपांतवादी पक्ष में समाज के मानसिक दृष्टिकोण को कृषि के प्रति परिवर्तन करने की आवश्यकता है। समकालीन समय में कृषि और कृषक को हीन दृष्टि से देखा जाता है। जिसमें कृषक को एक दबा– कुचला समुदाय माना जाता है। परंतु वास्तविकता केवल यही नहीं है। कृषि में समय अनुसार सुधार किए जाएं तो न केवल इसे लाभ केंद्रित बनाया जा सकता है। बल्कि सतत कृषि विकास को स्थापित किया जा सकता है।

कृषक समुदाय केंद्रित सुधार

राज्य बाजार एवं समाज के स्तर पर सुधारों के साथ–साथ कृषक समुदाय द्वारा स्वयं के स्तर पर भी परिवर्तन की आवश्यकता है। एक कृषक समुदाय के रूप में दो स्तरों पर सुधार किए जाने चाहिए। प्रथम कार्यक्षेत्र केंद्रित तथा द्वितीय राजनीतिक केंद्रित। कार्यक्षेत्र के आधार पर कृषि को व्यवस्थात्मक प्रक्रिया को अपनाते हुए दीर्घकालीन कार्यनीति को अपनाना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि कृषक तत्कालीन लाभ प्राप्ति के लिए दीर्घकालीन क्षति को उठाता है। जैसे फसलों में रासायनिक खाद और कीटनाशकों का प्रयोग आदि। इसलिए कृषक समुदाय को ऐसी नीतियों के अनुसार अपनी कृषि व्यवस्था को स्थापित करना चाहिए जो दीर्घकालीन लाभ भी प्रदान करें।

इसमें जैविक खेती एक विकल्प के रूप में हो सकती है। जिससे किसान न केवल उच्च उत्पादन ले सकता है, बल्कि यह भूमि की गुणवत्ता में भी वृद्धि करती है। द्वितीय, राजनीतिक स्तर पर कृषक समाज अपने आपको एक समुदाय के रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाया है। किसान राजनीति जोकि कृषक समाज को एक समुदाय के रूप में संगठित करती थी। उसके विघटन के पश्चात कृषक अपनी पहचान धर्म, जाति, क्षेत्र आदि से जोड़ कर देखने लगा है। जिसके कारण कृषक समुदाय की चुनावी राजनीति में प्रासंगिकता कम हो गई है और इसका प्रभाव आज कृषि नीति के स्तर पर भी परिलक्षित होता है। इसके अलावा कृषक आंदोलन में लोकलुभावन मांगे जैसे ऋण माफी आदि ने भी वास्तविक कृषि विकास से किसान के ध्यान को भटका दिया है। जिससे इन लोकलुभावन नीतियों का लाभ केवल कुछ ही सीमित किसानों को मिल पाता है। इसलिए कृषक समुदाय को स्वयं के स्तर पर भी सुधार करने की आवश्यकता है।

अतः उपरोक्त प्रतिमान के द्वारा भारतीय कृषक समुदाय को संघर्ष से समन्वय की तरफ अग्रसर किया जा सकता है और भारतीय कृषि को कृषकोन्मुख बनाया जा सकता है।

♦♦♦♦♦

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

अकादमिक अनुसंधान केन्द्र भवन

गुरू तेग बहादुर मार्ग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली–110007

www.dcrc.du.ac.in office@dcrc.du.ac.in @dcrcofficial +91-11-27666281